राजनीतिक सिद्धांत के उपागम

राजनीतिक सिद्धांत के परंपरागत उपागमों में दार्शनिक उपागम, ऐतिहासिक उपागम, वैधानिक उपागम एवं संस्थागत उपागमों को सम्मिलित किया जाता है।

1. दार्शनिक उपागम (Normative Approach)- राजनीति के अध्ययन में दार्शनिक उपागम, सर्वाधिक प्राचीन है, जिसे **नैतिक, मानकीय और तात्विक** उपागमों के नाम से भी जाना जाता है। इनके अनुसार, 'राजनीतिक सिद्धांत का अध्ययन मूलतः एक अच्छे राज्य एवं एक समाज का अध्ययन है एवं राजनीतिक वैज्ञानिक को एक अच्छे समाज और राज्य का ज्ञान होना चाहिये।' इनके अनुसार, 'राजनीतिक वैज्ञानिक का कार्य केवल अपने मतों को व्यक्त करना ही नहीं है, बल्कि एक अच्छे समाज के निर्माण को प्रेरित करना है तथा परंपरागत विचारकों में प्लेटो से लेकर काण्ट तक के दार्शनिकों की परंपरा विद्यमान है, जिन्होंने राजनीति और नैतिकता के मध्य घनिष्ठ संबंध स्थापित किया और इन्होंने 'चाहिए' पर बल प्रदान किया।'

दार्शनिक उपागम को पुनर्जीवित करने का श्रेय 'लियोस्ट्रॉस' को दिया जाता है। जिनके अनुसार, मूल्य, राजनीतिक सिद्धांत के अभिन्न भाग हैं, इन्हें राजनीतिक सिद्धांत से पृथक् नहीं किया जा सकता है। इन्होंने उस प्रवृत्ति की भी कड़ी आलोचना की, जिसमें राजनीति विज्ञान एवं राजनीतिक दर्शन के मध्य कृत्रिम भेद स्थापित किया गया। इनके अनुसार, आरंभ से ही राजनीतिक दर्शन और राजनीति विज्ञान एक-दूसरे से अंतर्संबंधित थे। इसमें सभी मानवीय घटनाओं का समूचा अध्ययन किया जाता है। इनके अनुसार, मानवीय घटनाओं के अध्ययन में दर्शन एवं विज्ञान के मध्य भेद करना अतार्किक है। इन्होंने तो यहां तक कहा कि कोई भी राजनीति विज्ञान, गैर-दार्शनिक नहीं हो सकता और कोई भी राजनीतिक दर्शन गैर-वैज्ञानिक नहीं हो सकता।

2. ऐतिहासिक उपागम- ऐतिहासिक उपागम के मूल मान्यताकारों में सेबाइन, मैकलॉवेल एवं लिण्डसे हैं। सेबाइन ने राजनीतिक सिद्धांत की विशेषता बताते हुये कहा कि **राजनीतिक सिद्धांत में तीन प्रकार के तत्व अंतर्निहित होते हैं**-

(i) तथ्यात्मक। (ii) कारणात्मक। (iii) मूल्यात्मक।

इनके अनुसार, महान राजनीतिक सिद्धांतों का निर्माण अत्यधिक संकट और तनावपूर्ण परिस्थितियों में हुआ। इनके अनुसार, समूचे राजनीतिक सिद्धांत के इतिहास में ऐतिहासिक रूप में **दो घटनाओं का अत्यधिक महत्व है**-

(i) तीसरी, चौथी शताब्दी ईसा पूर्व जब प्लेटो और अरस्तू ने अपने विचार प्रकट किये।

(ii) इंग्लैण्ड में 1640-1690 के मध्य का काल, जिसमें हॉब्स और लॉक ने अपने राजनीतिक सिद्धांतों का निर्माण किया।

इनके अनुसार, यूरोप के सामाजिक और बौद्धिक इतिहास में ये काल अत्यधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं, क्योंकि इन्हीं संकटपूर्ण परिस्थितियों के परिणामस्वरूप राजनीतिक दार्शनिकों ने अपने विचार व्यक्त किये। इसीलिए राजनीतिक सिद्धांत को समझने के लिये उस देश-काल एवं परिस्थिति का अध्ययन आवश्यक है, जिन परिस्थितियों में इनका विकास हुआ। यह आवश्यक नहीं है कि राजनीतिक सिद्धांतकारों ने इन घटनाओं में प्रत्यक्ष भागीदारी की हो, लेकिन वे इन घटनाओं से प्रभावित होते हैं, इससे भी बढ़कर वे घटनाओं को प्रभावित भी करते हैं। **इसलिये सेबाइन के अनुसार, राजनीतिक सिद्धांत का उद्देश्य दोहरा होता है**-

(i) अमूर्त विचारों का निर्माण करना।

(ii) ऐतिहासिक परिस्थितियों को प्रभावित करना।

यह बिंदु उल्लेखनीय है कि राजनीतिक सिद्धांत सत्य है या असत्य। इसके मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। राजनीतिक सिद्धांत व्यर्थ की बौद्धिक गतिविधि नहीं है, बल्कि इसके द्वारा लोगों को सहमत किया और विश्वास में भी लिया जाता है। सेबाइन के अनुसार, 'राजनीतिक सिद्धांत में राजनीतिक विचार, राजनीतिक दर्शन तथा राजनीति विज्ञान भी सम्मिलित होते हैं। ऐतिहासिक उपागम की आलोचना मूलतः अनुभववादी विचारकों द्वारा की गयी। **ईस्टन ने ऐतिहासिक उपागम के विचारकों को 'इतिहासवादी' कहा**-

(i) इतिहास को हूबहू प्रस्तुत करना इतिहासवाद कहलाता है।

(ii) व इससे नये सिद्धांत का निर्माण करना इतिहासकार का काम है।

ऐतिहासिक उपागम की आलोचना-

1. ईस्टन के अनुसार, इन विचारकों ने इतिहास की घटनाओं का अध्ययन करके केवल विचारकों द्वारा प्रतिपादित मूल्यों को पुनर्जीवित किया न कि इतिहास के मूल्यों का आधार बनाकर अपने किसी नये विचारों का निर्माण किया। ईस्टन के अनुसार, 'यह कार्य मूलतः इतिहासकारों का है, न कि राजनीतिक सिद्धांतकारों का।'

2. दार्शनिक समर्थकों ने ऐतिहासिक उपागम की कड़ी आलोचना की। क्योंकि इनके अनुसार, ऐतिहासिक उपागम के समर्थकों ने राजनीति विज्ञान की वैज्ञानिक प्रवृत्ति को समाप्त कर दिया। **दूसरी ओर,** इन्होंने वैज्ञानिक और अनुभवात्मक उपागम की आलोचना की, जो कि मूलतः राजनीतिक दर्शन के विरूद्ध सामने आया।

3. वैधानिक उपागम (Legal Approach)– वैधानिक उपागम भी परंपरागत उपागम है, जिसमें राजनीति को वैधानिक और न्यायिक प्रक्रियाओं व संस्थाओं के माध्यम से अध्ययन करने का प्रयत्न किया जाता है, क्योंकि विधि का निर्माण राज्य के द्वारा किया जाता है। डायसी जैसे विचारकों ने **राज्य को मूलतः एक वैधानिक व्यक्ति** के रूप में स्वीकार किया है, जिसके अध्ययन के लिये विधि के अध्ययन की आवश्यकता है या संविधान का अध्ययन आवश्यक है। इनके अनुसार, 'एक संगठित समाज, मूलतः एक राजनीतिक या सामाजिक गतिविधि नहीं है, बल्कि यह विशुद्ध वैधानिक व्यवस्था है। इस वैधानिक उपागम का आरंभिक उल्लेख बोदां, हॉब्स जैसे विचारकों में पाया जाता है। हॉब्स ने स्पष्ट कहा कि संप्रभु राज्य सर्वोच्च विधि निर्मात्री संस्था है। इनकी आज्ञा के पालन न करने के परिणामस्वरूप दण्ड प्राप्त होते हैं। यद्यपि आलोचकों के अनुसार, 'यह उपागम अत्यधिक संकीर्ण है, जिसमें केवल विधि पर ध्यान दिया गया है। मनुष्य के जीवन के समूचे पहलुओं पर नहीं।'

4. संस्थात्मक उपागम– इसके अंतर्गत् सरकार की औपचारिक संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है, जिसमें विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सम्मिलित हैं। इस उपागम का उल्लेख वॉल्टर बेजहॉट, मुनरो और लॉर्ड ब्रॉइस जैसे विचारकों में पाया जाता है, जिन्होंने राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन में राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन पर मूल बल प्रदान किया।

संदर्भिक दृष्टिकोण– संदर्भिक दृष्टिकोण का निर्माण स्किनर व पोलॉक जैसे विचारकों द्वारा किया गया। जिनके अनुसार, राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन के लिये पाठ्य-पुस्तक (Text Book) की बजाय, संदर्भ (Context) पर ध्यान देना चाहिये, क्योंकि किसी भी सिद्धांत का मूल्यांकन करते समय संदर्भों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। जैसे, यदि प्लेटो की 'रिपब्लिक' (Republic) का अध्ययन करना है और न्याय के सिद्धांत को समझना है, तो इसे संदर्भ के अनुसार ही परिभाषित कर सकते हैं। किसी विचारकों के सिद्धांत को एकांकी और संदर्भ से काटकर अध्ययन करना निरर्थक एवं अपूर्ण है।

राजनीतिक सिद्धांत के आधुनिक उपागम

1. व्यवहारवादी उपागम। **2.** समाजशास्त्रीय उपागम। **3.** मनोवैज्ञानिक उपागम।

1. व्यवहारवादी उपागम का आशय– व्यवहारवादी आंदोलन, राजनीति विज्ञान की विषयवस्तु को वैज्ञानिक अध्ययन प्रविधि द्वारा समझने का प्रयास है। व्यवहारवाद का आशय, **मानव के प्रेक्षण योग्य व्यवहार का अध्ययन** करना है तथा मानव व्यवहार को पूर्ण रूप में समझने के लिए समाजशास्त्र व मनोविज्ञान का भी सहारा लिया गया। व्यवहारवाद की आधारशिला रखने का मूल श्रेय 'शिकागो स्कूल' को दिया जाता है। व्यवहारवाद को बौद्धिक रूप में स्थापित करने का श्रेय 'चॉर्ल्स मेरियन' (The New Aspects of Politics, 1925) व हैरॉल्ड लॉसवेल को दिया (Who Gets, What, When & How) जाता है। चॉर्ल्स मेरियम व लॉसवेल दोनों ने राजनीति विज्ञान में मनोविज्ञान का प्रयोग किया।

व्यवहारवाद की मूल मान्यता– व्यवहारवादियों के अनुसार, 'राजनीति विज्ञान भी प्राकृतिक विज्ञान की भांति एक विज्ञान है। राजनीति विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान में कोई गुणात्मक अंतर नहीं होता।' अतः राजनीति विज्ञान का अध्ययन भी **वैज्ञानिक प्रविधि** से किया जा सकता है। **डेविड ईस्टन ने व्यवहारवादी आंदोलन के आठ (8) बौद्धिक आधारों का निर्माण किया, जो निम्न हैं**–

(i) नियमितता। (ii) सत्यापन। (iii) तकनीकी। (iv) गणना।
(v) मूल्य निरपेक्ष। (vi) व्यवस्थापन। (vii) विशुद्ध विज्ञान। (viii) एकीकरण।

व्यवहारवाद का उद्देश्य– व्यवहारवाद का मूल उद्देश्य राजनीति विज्ञान में **एक सामान्य सिद्धांत या व्यापक सिद्धांत** का निर्माण करना है। जैसाकि प्राकृतिक विज्ञानों में होता है।

व्यवहारवाद ने निम्न मान्यताओं का खण्डन किया– राजनीति विज्ञान के परंपरागत अध्ययन (ऐतिहासिक, संस्थात्मक व वैधानिक) के उपागम का खण्डन किया है। व्यवहारवादियों ने राजनीति विज्ञान में मूल्यों के बजाए, तथ्यों के अध्ययन पर बल दिया।

व्यवहारवाद की उत्पत्ति के मूल कारण– व्यवहारवाद की उत्पत्ति में यूरोपीय समाजशास्त्रियों में ऑगस्त कॉम्टे, मैक्स वेबर तथा दुःर्खीम जैसे विचारकों का प्रभाव पड़ा। ऑगस्त कॉम्टे ने प्रत्यक्षवाद का मूल आधार रखा। प्रत्यक्षवाद, अनुभववाद वैज्ञानिक ऑगस्त कॉम्टे के अनुसार, ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में अनुभवात्मक या वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग ही प्रत्यक्षवाद है। कॉम्टे के अनुसार, 'विश्वव्यवस्था तार्किक रूप में निर्मित है। इसलिए सामाजिक विकास एवं सामाजिक अंतःक्रिया के नियमों की खोज की जा सकती है। व्यक्ति विवेकशील है, जिसके द्वारा वह इन नियमों की खोज कर सकता है व अपने ज्ञान का प्रयोग अपने

हितों के लिए कर सकता है। व्यक्ति का यह विवेक न केवल सामाजिक व्यवहार के नियमों की खोज में सहायक है, अपितु इसके द्वारा व्यक्ति अपने लक्ष्यों की प्राप्ति भी कर सकता है। इसी आधार पर **ऑगस्त कॉम्टे ने ऐतिहासिक विकास को तीन (3) चरणों में विभाजित किया**-(i) धार्मिक। (ii) तत्वात्मक। (iii) सकारात्मक, वैज्ञानिक या प्रत्यक्षवादी सम्मिलित हैं। मैक्स वेबर ने नैतिक सापेक्षवाद का प्रतिपादन किया। दु:र्खीम, संरचनात्मक प्रकार्यवाद के संस्थापक हैं व तार्किक प्रत्यक्षवाद एवं विएना स्कूल का भी इस पर प्रभाव पड़ा। तार्किक प्रत्यक्षवाद के द्वारा भाषा को वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ बनाने का प्रयत्न किया गया तथा साम्यवाद भी व्यवहारवाद के उत्पन्न होने का एक कारण है।

व्यवहारवाद का मूल दर्शन- राजनीतिक सिद्धांत के अनुभवात्मक उपागम में प्रेक्षण योग्य राजनीतिक व्यवहारों के अध्ययन पर बल दिया गया। जिसका प्रारंभ अमेरिका में शिकागो स्कूल द्वारा किया गया तथा **चॉर्ल्स मेरियम** को व्यवहारवादी सिद्धांत का बौद्धिक पिता माना जाता है। वर्ष-1921 में उन्होंने 'अमेरिकन पोलिटिकल साइंस रिब्यू' में लिखते हुए कहा कि राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन में समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, जीवविज्ञान एवं सांख्यिकी की तकनीकी प्रयोग करने का आग्रह किया, जिससे राजनीतिक सिद्धांतों को भी वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक बनाया जा सके। उन्होंने वर्ष-1925 में अपनी पुस्तक-"New Aspects of Politics" में लिखते हुए कहा कि 'राजनीति विज्ञान में अनुभवात्मक प्रविधियों का प्रयोग करके सामान्य सिद्धांतों का निर्माण किया जा सकता है।'

अत: आधुनिक अनुभवात्मक उपागम में परंपरागत या शास्त्रीय एवं मानकी उपागमों को पूर्णत: अस्वीकृत कर दिया गया तथा इन्हें केवल कल्पनात्मक सिद्धांत की संज्ञा दी गयी। चॉर्ल्स मेरियम के अलावा हैरॉल्ड लॉसवेल, डेविड ट्रूमैन एवं हरबर्ट साइमन जैसे राजनीतिक वैज्ञानिकों ने व्यवहारवादी उपागम को आगे बढ़ाया। इनके अनुसार, 'राजनीतिक सिद्धांत का सरोकार मूल्यों से नहीं, अपितु तथ्यों से है।' इसीलिये इन्होंने तथ्यों की गणना के लिए आठ (8) बौद्धिक आधारों का निर्माण भी किया। शिकागो स्कूल की मूल मान्यताओं को **निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है**-

(i) इसके द्वारा राजनीतिक आदर्शों एवं संस्थाओं की बजाय, व्यक्ति और समूहों के व्यवहारों के अध्ययन पर बल दिया गया।
(ii) इन्होंने प्राकृतिक विज्ञान की पद्धतियों का प्रयोग राजनीति विज्ञान में करने का समर्थन किया।
(iii) इन्होंने व्यक्ति के व्यवहार के विश्लेषण पर मूल बल दिया। इसलिए इसे विश्लेषणात्मक सिद्धांत भी कहा जाता है।

व्यवहारवाद की कमियां- आलोचकों के अनुसार, व्यवहारवादी अतितथ्यवाद के शिकार हो गये और ये किसी भी सामान्य सिद्धांत का निर्माण करने में असफल रहे। आलोचकों ने **इस उपागम की कमियों को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया**-

(i) राजनीतिक सिद्धांत की विषयवस्तु मानव और मानव व्यवहार है, जो सदैव परिवर्तनशील होता है। यह वस्तुओं की भांति नहीं होता।
(ii) अध्ययन कर्ता के भी अपने मूल्य होते हैं। इसलिये वह मूल्यों से पूर्णत: तटस्थ नहीं हो सकता।
(iii) मानव व्यवहार का अध्ययन वस्तुनिष्ठ रूप में प्रयोगशाला में करना संभव नहीं है और राजनीति विज्ञान में प्रत्येक मूल्यों को हटा देना न आवश्यक है और न ही वहनीय।

व्यवहारवादी आंदोलन के परिणामस्वरूप राजनीतिक सिद्धांत में तथ्य एवं मूल्यों के मध्य का विवाद भी उत्पन्न हुआ, क्योंकि व्यवहारवादियों ने अपने अध्ययन में तथ्यों को अत्यधिक महत्व दिया। उन्होंने मूल्य निरपेक्ष अध्ययन पर बल प्रदान किया। परंतु बाद में तथ्य और मूल्यों के इस विभाजन को उत्तर-व्यवहारवादियों ने संशोधित किया। उन्होंने तथ्य और मूल्यों के समन्वय का प्रयत्न किया। डेविड ईस्टन ने वर्ष-1969 में 'अमेरिकन पोलिटिकल एसोसिएसन' की बैठक को संबोधित करते हुये कहा कि वर्तमान समाज में अनेक समस्याएं व्याप्त हैं। जैसे-वियतनाम युद्ध, अश्वेतों का नागरिक अधिकार आंदोलन व महिलाओं का आंदोलन। परंतु इन समस्याओं का समाधान राजनीतिक वैज्ञानिक नहीं कर सके। इसीलिए ईस्टन ने इस बिंदु पर बल दिया कि राजनीतिक सिद्धांत में मूल्यों का निर्विवाद महत्व है। उन्होंने व्यवहारवाद का संशोधन करते हुये उत्तर-व्यवहारवाद की आधारशिला रखी। इनके अनुसार, **उत्तर-व्यवहारवाद एक वास्तविक क्रांति** है। यह मूलत: परिवर्तन या सुधार है, खण्डन नहीं। उन्होंने यह भी माना कि इसका संबंध किसी एक विचारधारा से नहीं, बल्कि सभी विचारधाराओं से है। **उत्तर-व्यवहारवाद की मूल मान्यतायें निम्नलिखित हैं**-

(i) विषयवस्तु या मूल तत्व तकनीकी से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।
(ii) समकालीन राजनीतिक सिद्धांतकारों को सामाजिक परिवर्तन पर मूल बल देना चाहिए, न कि सामाजिक सर्वेक्षण पर।
(iii) उत्तर-व्यवहारवादियों के अनुसार, राजनीतिक वैज्ञानिकों को राजनीति की कठोर वास्तविकताओं से मुंह नहीं मोड़ना चाहिये।
(iv) राजनीतिक वैज्ञानिकों का बुद्धजीवी होने के कारण समाज में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।
(v) वैज्ञानिक पद्धति के नाम पर मूल्यों को उपेक्षित करना अनुचित है।
(vi) इन्होंने क्रियानिष्ठता पर अत्यधिक बल दिया। जिसके अनुसार, राजनीतिक सिद्धांतकारों का सामाजिक समस्याओं से सरोकार होना चाहिये।

(vii) बुद्धजीवियों की समाज में सकारात्मक भूमिका एवं दायित्व होना चाहिये, जिसके निर्वाह के लिये इन्हें सदैव कार्य करना चाहिये।

अत: उत्तर-व्यवहारवादियों ने तथ्य एवं मूल्यों के मध्य के विभाजन को पूर्णत: अस्वीकृत कर दिया तथा इन्होंने तथ्य एवं मूल्यों का समन्वय किया। इसके अतिरिक्त तथ्य एवं मूल्यों के समन्वय का श्रेय **अर्नोल्ड ब्रेख्त** को भी दिया जाता है, जिन्होंने 'वैज्ञानिक मूल्य सापेक्षवाद की संकल्पना' का निर्माण किया। जिनके अनुसार, 'निरपेक्ष रूप में किसी भी मूल्य का वैज्ञानिक अध्ययन करना कठिन है।'

2. समाजशास्त्रीय उपागम– इस उपागम के मान्यताकारों के अनुसार, राज्य, मूलत: एक सामाजिक संगठन है, जिसकी मूल इकाई व्यक्ति है। समाज की विशेषता का वर्णन व्यक्तियों के गुणों के आधार पर किया जा सकता है। इसीलिये सभी प्रकार की राजनीतिक क्रियायें समाज में ही संचालित होती हैं। इसलिये राजनीतिक व्यवस्था के आनुभविक अध्ययन में सामाजिक प्रक्रियाओं का अत्यधिक महत्व है। उदाहरण के लिये, भारतीय व्यवस्था का अध्ययन करना है, जिसके लिये धर्म, जाति और नृजातीय कारकों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। समकालीन राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन में **आमण्ड और डेविड ईस्टन** जैसे विचारकों द्वारा सामाजिक उपागम पर बल दिया, क्योंकि सामाजिक पृष्ठभूमि के अभाव में व्यक्ति के व्यवहार की सही समझ संभव नहीं है। इसीलिये **ईस्टन** ने एकीकरण पर बल दिया। कुछ समकालीन सिद्धांतकारों ने राजनीति एवं समाजशास्त्र के अंतर्संबंध को निर्मित करते हुये राजनैतिक समाजशास्त्र का निर्माण किया।

3. मनोवैज्ञानिक उपागम– आधुनिक राजनीति विज्ञान या सिद्धांत में ग्राहम वॉलास, चॉर्ल्स मेरियम और हैरॉल्ड लॉसवेल जैसे विचारकों ने राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिये मनोवैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग किया। इन्होंने लॉसवेल जैसे विचारकों ने राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिये मनोवैज्ञानिक तरीके का प्रयोग किया। इन्होंने मानव व्यवहार का अध्ययन करने के लिये फ्रॉयड और मैकडूगल जैसे मनोवैज्ञानिकों के विचारों का प्रयोग किया। क्योंकि मनोविज्ञान के अंतर्गत् व्यक्ति के व्यक्तित्व, व्यवहार, भावनाएं एवं अभिप्रेरणा का अध्ययन किया जाता है। लॉसवेल ने स्पष्ट रूप में फ्रॉयड के मनोविज्ञान का प्रयोग राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन के लिए किया। **चॉर्ल्स मेरियम** ने राजनीति विज्ञान या सिद्धांत के आनुभविक अध्ययन पर बल दिया। उनके अनुसार, राजनीति, मूलत: शक्ति का अध्ययन है। लॉसवेल ने शक्ति के इसी अध्ययन को प्रभाव के अध्ययन के रूप में व्यक्त किया। उनके अनुसार, 'भविष्य की राजनीतिक समस्याओं का (विश्लेषण) समाधान भी मनोविश्लेषण से संभव है।' इनके अनुसार, **'यदि राजनीति, शक्ति का संघर्ष है, तो संघर्ष के कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं।'**

राजनीतिक सिद्धांत का पतन– आलोचकों के अनुसार, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मनोविज्ञान, समाजशास्त्र व नृजाति विज्ञान जैसे विषयों का प्रभावी सैद्धांतिक विकास हुआ। लेकिन राजनीति विज्ञान में प्रभावी सैद्धांतिक विकास नहीं हो सका। लॉस्की जैसे विचारकों के बाद राजनीतिक सिद्धांत का विकास पूर्णत: ठप हो गया, जिसे विचारकों ने राजनीतिक सिद्धांत के पतन की संज्ञा दी। इस मान्यता का प्रतिपादन मूलत: **ईस्टन एवं अल्फ्रेड कॉबेन** ने किया। जबकि **पीटर लॉसलेट और रॉवर्ट ढ़ाल** की मृत्यु हो चुकी है, राजनीतिक सिद्धांत की नहीं। **राजनीतिक सिद्धांत के क्षरण के निम्नलिखित कारण माने गये**–

(i) ईस्टन के अनुसार, 'इतिहासवाद के कारण राजनीतिक सिद्धांत का क्षरण हुआ, क्योंकि इतिहासवादी दृष्टिकोण से संबंधित विचारकों ने केवल अतीत के अध्ययन पर बल दिया। यह नये मूल्यों का निर्माण करने में असफल रहे। इन्होंने केवल इतिहास की पुनरावृत्ति की, जो मूलत: इतिहासकार का कार्य है।' ईस्टन के अनुसार, 'इन लोगों ने समाज की समकालीन समस्याओं को उपेक्षित किया और किसी भी मूल्य का निर्माण करने में असफल रहे।' जबकि प्लेटो से लेकर मॉर्क्स जैसे दार्शनिकों ने सदैव समाज में मूल्यों के निर्माण में बल दिया।

(ii) राजनीतिक सिद्धांत के क्षरण का अन्य कारण नैतिक सापेक्षता भी है। यह ईस्टन की मान्यता है। नैतिक सापेक्षतावादी मान्यता की उत्पत्ति का श्रेय **ऑगस्त कॉम्टे व मैक्स वेबर** जैसे विचारकों की देन है, जिन्होंने तथ्यों और मूल्यों का अलगाव किया। क्योंकि इन लोगों के अनुसार, 'मूल्य केवल व्यक्ति या समूह की वरीयता मात्र है।' ईस्टन के अनुसार, 'तथ्य और मूल्यों के विभाजन के कारण राजनीतिक सिद्धांतकारों ने सृजनात्मक मूल्यों में रूचि नहीं दिखायी। जबकि तात्कालिक समाज में अत्यधिक तीव्र और महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे।'

लेकिन राजनीतिक वैज्ञानिकों ने इन पर किसी प्रकार की अनुक्रिया व्यक्त नहीं की। ईस्टन के अनुसार, 'राजनीतिक वैज्ञानिक केवल मूल्यों का विश्लेषण कर्ता ही नहीं, बल्कि मूल्यों का निर्माता भी हैं।' वैज्ञानिक ज्ञान या पद्धतियां केवल साधन होती हैं, जिससे विशेष साध्य की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है। इसीलिये राजनीतिक वैज्ञानिकों का उद्देश्य केवल तथ्यों का संग्रह करना ही नहीं है। जर्मीनों ने यह माना कि राजनीतिक सिद्धांत का क्षरण हो रहा है। इनके अनुसार, 'इस पतन का मूल कारण ऑगस्त कॉम्टे की प्रत्यक्षवादी मान्यता है, जिन्होंने प्रत्येक घटना की वैज्ञानिक एवं अनुभवात्मक अध्ययन पर बल दिया।' जर्मीनों के अनुसार, 'राजनीति विज्ञान का विकास प्रत्यक्षवाद के समानांतर नहीं हो सकता, क्योंकि इसी प्रत्यक्षवादी के कारण व्यवहार का जन्म हुआ।' व्यवहारवाद ने राजनीति विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञानों की भांति विज्ञान बनाने का प्रयत्न किया। यद्यपि

जर्मीनों ने बाद में यह माना कि राजनीतिक सिद्धांत का उत्थान भी हो रहा है।

राजनीतिक सिद्धांत के विकास का समकालीन चरण (राजनीतिक सिद्धांत का उत्थान)- समकालीन युग में राजनीतिक सिद्धांत में तथ्य, मूल्यों का विवाद अतीत का विषय बन गया। यह मान्यता भी अप्रासंगिक हो गयी कि राजनीतिक सिद्धांत का क्षरण या पतन हो रहा है। वर्ष-1971 में जब जॉन रॉल्स ने "Theory of Justice" लिखा, तब यह बिल्कुल सिद्ध हो गया कि राजनीतिक सिद्धांत के क्षरण की मान्यता बिल्कुल अतार्किक है। समकालीन युग में व्यावहारिक, वैज्ञानिक एवं मूल्यात्मक सिद्धांतों का भी विकास हो रहा है। समकालीन युग में तार्किक चयनवाद एवं सार्वभौमिक चयनवाद सिद्धांत का विकास हुआ। तार्किक चयनवादी सिद्धांत का निर्माण आर्थिक सिद्धांतों के आधार पर हुआ, जिसमें मतदाता, नौकरशाही, राजनेताओं और यहां तक कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में राज्य के व्यवहार के अध्ययन का भी प्रयत्न किया गया। इस मान्यता का विकास एंथनी डॉउन्स, मैंकर ओलसन, विलियम निस्कॉनेन जैसे विचारकों द्वारा किया गया। विलियम निस्कॉनेन की यह स्पष्ट मान्यता है कि 'नौकरशाही के द्वारा अपने हितों को संरक्षित करने का प्रयत्न किया जाता है तथा नौकरशाही आर्थिक रूप में एक अकुशल संगठन है।' समकालीन युग में खेल-सिद्धांत का भी विकास हुआ, जिसे गणित की एक शाखा के रूप में विकसित किया गया। खेल-सिद्धांतकारों ने अपने अनेक मॉडल का निर्माण किया, जिसमें 'कैदी की दुविधा का मॉडल' और 'चिकेन गेम का मॉडल' भी सम्मिलित है। संकटपूर्ण परिस्थितियों में अपने को बचा लेना ही 'चिकेन गेम' है।

इसके अतिरिक्त समकालीन राजनीतिक सिद्धांत में नारीवाद, पर्यावरणवादी मान्यताओं का भी विकास हुआ, जिन्होंने राजनीति की स्थापित मान्यताओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। इसी के साथ नव-संस्थावाद का भी विकास हुआ, जिन्होंने अपना अध्ययन औपचारिक संरचना के बजाय, नीति-निर्माण एवं वास्तविक व्यवहार पर बल दिया। नव-मॉर्क्सवादियों ने आलोचनात्मक सिद्धांत का निर्माण किया और बहुसंस्कृतिवाद का भी विकास हुआ। समकालीन युग, उत्तर-आधुनिकता का युग है, जिसमें **सार्वभौमिक एवं निरपेक्ष ज्ञान की बजाय, विचार-विमर्श और लोकतंत्र पर अत्यधिक बल प्रदान किया गया।** उत्तर-आधुनिकतावादी मान्यता के द्वारा औद्योगिक एवं वर्ग विभाजित समाज की बजाय, विखंडित बहुलवादी एवं सूचना पर आधारित समाज पर बल दिया गया। व्यक्ति की भूमिका उत्पादक की बजाय, उपभोक्ता के रूप में परिवर्तित हो गयी तथा वर्ग, धर्म एवं नृजातीय निष्ठाओं की बजाय, व्यक्तिवाद प्रभावी हुआ। इसलिये राजनीतिक सिद्धांत का लगातार एवं निरंतर विकास हो रहा है। नव-संस्थावाद, संस्था की बजाय, व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।

राज्य का सिद्धांत

1. मॉर्क्सवादी राज्य का सिद्धांत- मॉर्क्सवादियों का राज्य के संबंध में दो दृष्टिकोण विद्यमान हैं-

(i) मॉर्क्सवादियों ने पूंजीवादी राज्य के विचार का खण्डन किया और **कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो** में लिखते हुए मॉर्क्स ने कहा कि राज्य पूंजीवादी वर्ग की कार्यकारी समिति है। अत: मॉर्क्स ने राज्य को वर्ग यंत्र, शोषण के यंत्र तथा परजीवी संस्था के रूप में चित्रित किया।

(ii) मॉर्क्स ने **लुईस वोनापार्टा के 18वें ब्रूमेर** में लिखते हुए कहा कि राज्य आर्थिक गतिविधियों से सापेक्षिक रूप में स्वायत्त है। उन्होंने फ्रांस के नेपोलियन के राज्य का उदाहरण देते हुए कहा कि नेपोलियन के शासन की व्याख्या आर्थिक निर्धारणवाद के रूप में नहीं हो सकती। क्योंकि शासन में बुर्जुआ वर्ग के बजाय, समाज के अनेक वर्ग के लोग शामिल थे। मॉर्क्स का विचार, सापेक्षिक स्वायत्तता का विचार कहलाता है, जो मॉर्क्स के द्वारा वर्णित राज्यों के पूर्व सिद्धांतों से अलग है। सापेक्षिक स्वायत्तता, राज्य की व्याख्या करने के लिए आर्थिक स्वरूप पर्याप्त नहीं। मॉर्क्स के इसी विचार को नव-मॉर्क्सवादियों ने बढ़ाया।

नव-मॉर्क्सवादियों का विचार- नव-मॉर्क्सवादी विचारक **राज्य के सापेक्ष स्वायत्तता के विचारों के समर्थक** हैं और यह प्रवृत्ति पहली बार ग्रामशी के विचारों में पायी जाती है, जिन्होंने राज्य की व्याख्या के लिए नागरिक समाज के महत्व को स्वीकार किया और यह कहा कि राज्य का आधिपत्य मूलत: सांस्कृतिक व वैचारिक होता है, न कि बल प्रयोग। इन्हीं विचारों को आधार बनाते हुए **रॉल्फ मिलिबैंड तथा निकोस पोलंजा** ने नव-मॉर्क्सवादी राज्य के सिद्धांत को आगे बढ़ाया। मिलिबैंड ने अपनी रचना-"The State in Capitalist Society" (Ralph Miliband) में राज्य को शासक वर्ग के उपकरण (Instrument) के रूप में चित्रित किया। उनके अनुसार, राज्य के अधिकारी या कार्यकर्ता समाज के संपन्न वर्गों से आते हैं। इसलिए राज्य के द्वारा पूंजीवाद का समर्थन किया जाता है। इनके अनुसार सिविल सेवकों, व्यवसायी घरानों के लोगों एवं उद्योगपतियों की सामाजिक पृष्ठभूमि आपस में मिलती-जुलती हैं और ये सभी समूह पूंजीवादी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। नव-मॉर्क्सवादी पूंजीवादी राज्य की व्याख्या के लिए आर्थिक कारणों पर निर्भर रहने के बजाय, सामाजिक और नौकरशाही जैसे तत्वों पर बल देते हैं। जबकि परंपरागत मॉर्क्सवादियों ने केवल आर्थिक कारणों द्वारा राज्य को विश्लेषित करने व समझने का प्रयत्न किया।

नव-मॉर्क्सवादी आधार (आर्थिक कारक) के बजाय, अधिरचना पर ज्यादा बल प्रदान करते हैं। निकोस पोलांजा ने अपनी पुस्तक-"Political Power and Social Classes" (Nicos Poulantzas) में उपरोक्त दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया, बल्कि उन्होंने आर्थिक व सामाजिक शक्ति की संरचनाओं पर ध्यान दिया, जिससे राज्य की स्वायत्तता पर प्रतिबंध आरोपित होता है। इनके अनुसार, राज्य जिस सामाजिक व्यवस्था में कार्य करता है उसी को बनाए रखने का प्रयत्न करता है। इसीलिए पूंजीवादी राज्य लंबे समय में पूंजीवाद के हितों का ही संरक्षण करता है। यद्यपि कभी-कभार पूंजीवादी वर्ग के द्वारा भी राज्य के कार्यों का विरोध किया जाता है। उदाहरण के लिए, राज्य के द्वारा कल्याणकारी कार्यक्रमों का पूंजीवादी लोगों के द्वारा विरोध किया जाता है। यद्यपि कल्याणकारी कार्यक्रम के द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था श्रमिकों को छूट प्रदान करके उनको व्यवस्था के साथ जोड़ने का प्रयत्न करती है। नव-मॉर्क्सवादियों का विचार परंपरागत मॉर्क्सवादियों के विचार से थोड़ा सा अलग है। नव-मॉर्क्सवादी राज्य को केवल वर्ग-व्यवस्था का परिणाम ही नहीं मानते। नव-मॉक्सवादियों के अनुसार, समाज का दो वर्गों में विभाजन समाज का अत्यधिक सरलीकृत चित्रण है। जैसाकि पोलांजा ने कहा है कि बुर्जुआ वर्ग में भी अनेक प्रकार के विभाजन विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए, वित्तीय व्यवस्था को संचालित करने वाले पूंजीपति तथा विनिर्मित उद्योगों को संचालित करने वाले पूंजीपति।

नव-मॉर्क्सवादियों के अनुसार, समकालीन चुनावी लोकतंत्र के युग में शासक वर्ग के अलावा अनेक समूहों का निर्माण हो चुका है और राज्य के द्वारा इन समूहों के बीच विद्यमान संघर्षों को हल किया जाता है। इसलिए राज्य केवल शासक वर्ग के हाथ का उपकरण ही नहीं है, बल्कि यह गतिशील निकाय है, जिसके द्वारा समाज में शक्ति संतुलन बनाए रखा जाता है। नव-मॉर्क्सवादियों का यह विचार बहुलवादी विचारों का खण्डन है, क्योंकि बहुलवादी राज्य को एक तटस्थ व निष्पक्ष संस्था के रूप में चित्रित करते हैं। मॉर्क्सवादियों के अनुसार, 'राज्य तटस्थ एवं निष्पक्ष नहीं हो सकता।' (जैसे ग्रामशी) नव-मॉर्क्सवादियों के अनुसार, पूंजीवादी राज्य बना हुआ है और पूंजीवादी राज्य के द्वारा सांस्कृतिक व वैचारिक रूप में पूंजीवादी व्यवस्था को बनाए रखने का प्रयत्न किया जा रहा है।

2. राज्य का नारीवादी सिद्धांत- नारीवादियों ने राज्य के संबंध में दो प्रकार के विचार वर्णित किए हैं-**उदारवादी नारीवादी एवं उग्र-नारीवादी।**

(i) उदारवादी नारीवादी- उदारवादी नारीवादी यह मानते हैं कि राज्य द्वारा संचालित क्रमिक सुधारों के द्वारा लैंगिक समानता स्थापित की जा सकती है। इनके अनुसार, राज्य के द्वारा अनेक प्रकार की सुविधाओं का वितरण किया जाता है। इसलिए इन सुविधाओं पर समाज के सभी वर्गों की पहुंच सुनिश्चित होनी चाहिए। उदारवादी नारीवादी, राज्य की भूमिका को अत्यधिक सकारात्मक मानते हैं और राज्य द्वारा निर्मित विभिन्न विधियों के द्वारा ये महिलाओं के कल्याण को संभव मानते हैं। उदाहरण के लिए, राज्य के द्वारा समान कार्य के लिए, समान वेतन का प्रावधान करना, महिलाओं को गर्भपात का वैधानिक अधिकार प्रदान करना और राज्य के द्वारा बच्चों के देखभाल की विशेष सुविधा भी प्रदान की गयी। राज्य के सकारात्मक हस्तक्षेप से महिलाओं की स्थिति को और बेहतर बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, भारत में भूमि या भवन के रजिस्ट्रेशन में महिलाओं से कम शुल्क लिया जाता है तथा महिलाओं के लिए राज्य के द्वारा आरक्षण भी दिया जा सकता है।

(ii) उग्र-नारीवादी- उग्र-नारीवादियों का दृष्टिकोण, उदारवादी नारीवादियों से पूर्णतः अलग है। उग्र-नारीवादियों के अनुसार, राज्य एवं सरकार सामाजिक व्यवस्था के लघु रूप हैं या प्रतिबिम्ब हैं और समाज मूलतः पितृसत्तात्मक है। इसलिए राज्य भी पितृसत्तात्मक है और राज्य के द्वारा पितृसत्तात्मक व्यवस्था बनाये रखने का प्रयत्न किया जाता है। कैरोल पैटमेन के अनुसार, 'कल्याणकारी राज्य, मूलतः पितृसत्तात्मक राज्य हैं और महिलाएं अभी भी प्राकृतिक अवस्था में हैं।' अतः राज्य के अंतर्गत् कल्याणकारी सुविधाओं के वितरण में पुरूषों को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। इनके अनुसार, राज्य के सभी मानक पुरूषों के अनुसार निर्धारित हैं। सेना एवं पुलिस में भर्ती के मानक में पुरूषों के शरीर को ही मानक स्वीकार किया गया है। इनके अनुसार, परिवार में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा है और उसी प्रकार राज्य के द्वारा समाज में हिंसा उत्पन्न की जाती है।

उग्र-नारीवादी तथा मॉर्क्सवादी के विचारों में समानता- राज्य के विचारों के संबंध में मॉर्क्सवादियों व आमूल नारीवादियों के विचार मिलते-जुलते हैं। दोनों के अनुसार, **राज्य का आधार सामाजिक संरचनाओं में छिपा हुआ है।** मॉर्क्सवादी राज्य के आधार को आर्थिक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करते हैं। जबकि उग्र-नारीवादी इसे पितृसत्तात्मक सत्ता के रूप में देखते हैं। दोनों के अनुसार, समाज में मूलभूत परिवर्तन के बिना राज्य और सरकार से परिवर्तन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। दोनों राज्यों को शोषणकारी और समानता व सामाजिक न्याय के मार्ग में राज्य को सबसे बड़ी बाधा भी मानते हैं। उग्र-नारीवादियों ने कहा कि सामान्यतः व्यक्तिगत व सार्वजनिक जीवन में अलगाव किया जाता है, जबकि व्यक्तिगत या पारिवारिक जीवन में महिलाओं का शोषण, सार्वजनिक जीवन में शोषण का कारण भी बनता है।

3. उत्तर-उपनिवेशवादी राज्य का विकास- उत्तर-उपनिवेशवादी राज्य के विश्लेषण के लिये परंपरागत मॉर्क्सवादी विचार अपर्याप्त हैं, जिन्होंने राज्य को आर्थिक रूप में प्रभुत्वशाली वर्ग के हाथ का यंत्र माना। मॉर्क्स ने अपने विचार में अर्थव्यवस्था को अत्यधिक महत्व प्रदान किया और राज्य को आधार के रूप में व्यक्त किया गया। मॉर्क्स ने दूसरी श्रेणी के विचारों ने राज्य

के सापेक्ष स्वायत्तता के विचार को स्वीकार किया गया, जिसमें राज्य को केवल आर्थिक कारकों पर निर्भर संस्था नहीं, अपितु अन्य कारकों पर भी निर्भर माना गया। मॉर्क्स का यह विचार उसकी रचना-18th Brumare of louis Bonapart" जिसमें राज्य को स्वयं प्रभुत्वकारी वर्ग के रूप में चित्रित किया गया एवं इसे ही बाद में राज्य की सापेक्ष स्वायत्तता का सिद्धांत भी कहा गया।

उत्तर-उपनिवेशवादी समाजों में राज्य एवं सामाजिक वर्ग के मध्य का संबंध अत्यधिक जटिल है। पश्चिमी यूरोपीय समाजों में राज्य का निर्माण मध्यम वर्ग या बुर्जुआ वर्ग द्वारा किया गया। इसी बुर्जुआ वर्ग ने राज्य एवं सरकार के उन संस्थाओं का निर्माण किया, जिससे इसका प्रभाव बना रहे। परंतु **उत्तर-उपनिवेशवादी समाजों में राज्य की स्थापना मेट्रोपोलिटन बुर्जुआ** वर्ग द्वारा किया गया। इसी वर्ग के द्वारा समाज के अन्य वर्गों पर भी नियंत्रण स्थापित किया गया। **क्योंकि उत्तर-उपनिवेशवादी समाजों में तीन प्रकार के वर्ग विद्यमान हैं-**

(i) मेट्रोपोलिटन बुर्जुआ। (ii) घरेलू पूंजीपति या बुर्जुआ। (iii) सामंती वर्ग।

हम्जा अल्वी के अनुसार, उत्तर-उपनिवेशवादी राज्यों की संकल्पना अति विकसित है, क्योंकि इन समाजों में राज्य का निर्माण साम्राज्यवादी पूंजीपतियों के द्वारा किया गया। स्वतंत्रता के बाद भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि नौकरशाही, सेना और राजनीतिक दलों के द्वारा इस व्यवस्था पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया गया तथा शक्तिशाली सेना एवं प्रशासन के द्वारा इन देशों या समाजों पर नियंत्रण स्थापित किया गया। स्वतंत्रता के बाद घरेलू पूंजीपति असक्त थे। इसलिए इन लोगों ने नौकरशाही एवं सैन्य व्यवस्था से मिलकर समाज पर अपना नियंत्रण बनाये रखा। यद्यपि यह बिंदु उल्लेखनीय है कि उत्तर-उपनिवेशवादी राज्यों के राष्ट्रीय आंदोलनों में दलों के द्वारा नौकरशाही और सेना के विरूद्ध ही आंदोलन किया गया था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद दोनों आपस में मिल गये। यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात् मेट्रोपोलिटन बुर्जुआ का सीधा नियंत्रण समाप्त हो गया, परंतु इन देशों में अभी भी मेट्रोपोलिटन बुर्जुआ का प्रभाव बना हुआ है। समूची शिक्षा प्रणाली, नौकरशाही और सैन्य व्यवस्था पर उनके स्पष्ट प्रभाव देखे जा सकते हैं।

अतः उत्तर-उपनिवेशवादी समाजों में राज्य किसी एक वर्गमात्र के हाथ का यंत्र नहीं है, अपितु यह सापेक्षित रूप में स्वायत्त है। इसके द्वारा समाज के तीनों वर्गों के प्रतिस्पर्धी हितों के मध्य सामंजस्य बनाया जाता है। इनके द्वारा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है, जिसमें तीनों वर्गों के हित सुरक्षित रहें। इसलिए उत्तर-उपनिवेशवादी राज्यों में निजी संपत्ति और उत्पादन के पूंजीवादी तरीकों को बनाये रखा गया। इनके अनुसार, इन समाजों में सैन्य व्यवस्था एवं नौकरशाही का गुटतंत्र कायम है तथा समाज द्वारा निर्मित लाभों पर इन्हीं का नियंत्रण है। आर्थिक विकास के नाम पर नौकरशाही के द्वारा समूची आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया गया है। इसलिए 'हम्जा अल्वी' ने यह स्वीकार किया कि 'उत्तर-उपनिवेशवादी समाजों में मॉर्क्स के परंपरागत विचारों को प्रयुक्त करना व्यावहारिक नहीं है।'

इनके अनुसार, उत्तर-उपनिवेशवादी राज्यों पर अभी भी अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवादी व्यवस्था का नियंत्रण बना हुआ है। ये राज्य इसी पूंजीवादी व्यवस्था के अधीन अभी भी शोषित हैं, परंतु इन समाजों में **राज्य अत्यधिक विकसित** हैं, क्योंकि इसका निर्माण साम्राज्यवादी बुर्जुआ के द्वारा किया गया। यहां समाज अभी भी अत्यधिक असक्त और कमजोर हैं। जिन उत्तर-उपनिवेशवादी राज्यों में लोकतंत्र की स्थापना हुई, वहां नौकरशाही और सैन्य व्यवस्था के साथ दलों का भी अत्यधिक प्रभाव है, क्योंकि लोकतांत्रिक देशों में औपचारिक रूप में नौकरशाही एवं सैन्य व्यवस्था पर दलों का नियंत्रण होता है। यहां राजनीतिक दलों के द्वारा आम लोगों की इच्छाओं को पूर्ण करने का दावा किया जाता है। राजनीतिक दल लोगों के मध्य उत्पन्न असंतोष एवं विद्रोह की भावना को समाप्त कर देते हैं तथा यह दावा करते हैं कि सभी की समस्याओं का समाधान होगा। इन उत्तर-उपनिवेशवादी राज्यों में राजनेताओं एवं नौकरशाही का संबंध एक-दूसरे के पूरक एवं विरोधाभाषी भी हैं, क्योंकि दोनों मिलकर व्यवस्था का संचालन करते हैं, लेकिन दोनों के मध्य मतभेद भी कायम होते हैं। इसलिए अनेक उत्तर-उपनिवेशवादी राज्यों में नौकरशाही और सेना अत्यधिक शक्तिशाली हुई तथा इनके द्वारा समूची सत्ता पर नियंत्रण कर लिया गया। जैसे-पाकिस्तान।

उत्तर-उपनिवेशवादी राज्यों की आलोचना- गुन्नार मिर्डल-(Soft State) जनमत के दबाव के आगे राज्य विवश है। गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक-"Asian Drama" में 'मृदु राज्य' (Soft State) की संकल्पना प्रस्तुत करते हुए कहा कि दक्षिणी एशियाई समाजों में राज्य तुलनात्मक रूप में कमजोर है। राज्य, लोगों पर नियंत्रण और अनुशासन बनाये रखने में असफल रहता है। लोग राज्य की आज्ञा का पालन नहीं करते। उन्होंने इतना तक कहा कि इन समाजों में पूर्व पूंजीवादी तत्व (सामंतवादी) अत्यधिक प्रभावी हैं या सामंतवाद का अत्यधिक प्रभाव है। इससे यह स्पष्ट है कि मिर्डल का विचार हम्जा अल्वी के प्रतिकूल है। रशीउद्दीन खॉन ने 'संपूर्ण राज्य' (Total State) की संकल्पना प्रस्तुत की। खॉन के अनुसार, भारतीय राज्य पर किसी एक दल का अधिनायकत्व या निरंकुश नियंत्रण नहीं है, बल्कि समाज के सभी वर्गों का नियंत्रण राज्य पर बना हुआ है। राज्य के द्वारा समाज पर वैधानिक शक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इनके अनुसार, भारत में कांग्रेस ने सहिष्णुता, (आंतरिक) लेन-देन और आंतरिक अंतर्विरोधों को स्वीकार किया। इसलिए भारतीय समाज और मॉर्क्सवादी व्याख्या एकांगी व आंशिक है। यद्यपि यह सत्य है कि समाज में अधिक्रमता या विषमता बनी हुयी या कायम है।

निष्कर्ष– रजनी कोठारी ने भारत में लोकतंत्र के सफल प्रयोग के लिए समाज की सहिष्णु संस्कृति को अत्यधिक महत्व दिया। इनके अनुसार, भारतीय समाज का निरंतर लोकतांत्रीकरण हो रहा है। राज्य के द्वारा सामाजिक व आर्थिक विकास भी किया गया तथा सत्ता में सभी लोगों का प्रतिनिधित्व भी सुनिश्चित हुआ। इसलिये राज्य को एक वर्ग यंत्र के रूप में विश्लेषित करना पूर्णतः तार्किक एवं औचित्यपूर्ण नहीं है। वर्तमान युग में नौकरशाही में पारदर्शिता निर्मित करने का प्रयास किया जा रहा है। विकेंद्रित शासन के रूप में पंचायती राज का प्रयोग हो रहा है। इसलिये 'हम्जा अल्वी' की मान्यताएं पूर्णतः सत्य नहीं है। समकालीन युग में उत्तर–उपनिवेशवादी राज्य को प्रतिस्पर्धी राज्य भी कहा जाता है, क्योंकि उदारीकरण एवं निजीकरण के युग में उत्तर–उपनिवेशवादी राज्य ज्यादा से ज्यादा प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश आकर्षित करने के लिये प्रतिस्पर्धा भी कर रहे हैं।

4. बहुलवाद– बहुलवादियों ने राज्य का एक वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया, जो समकालीन विविधतामूलक और जटिल समाजों के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं। इनके अनुसार, शक्ति का केन्द्रीयकरण न तो व्यक्ति में और न ही किसी एक विशेष समूह में होता है, बल्कि शक्ति का वितरण समाज के विभिन्न समूहों में होता है। बहुलवादियों ने संप्रभुता की एकलवादी मान्यता को पूर्णतः अस्वीकृत कर दिया। इनके अनुसार, राज्य, समाज का सेवक है, मालिक नहीं। क्योंकि आधुनिक उदारवादी लोकतांत्रिक राज्यों में शक्ति का वितरण अनेक समुदायों में होता है। बहुलवादियों ने राज्य की नैतिक सर्वोच्चता को भी खण्डित किया, जिसका प्रतिपादन हीगल जैसे विचारकों ने किया था। इनके अनुसार, राज्य की इस नैतिक सर्वोच्चता का परिणाम सर्वाधिकारवाद एवं निरंकुशतावाद के रूप में परिवर्तित हुआ। बहुलवादी राज्य के मूल मान्यताकार लॉस्की, लिण्डसे, बॉर्कर और मिस फॉलेट हैं। इन्होंने कहा कि 'समाज में समूहों का अस्तित्व न तो राज्य द्वारा निर्मित होता है और न ही यह राज्य पर आधारित होता है।' बहुलवादियों के अनुसार, 'विधि, राज्य की आज्ञा का परिणाम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक औचित्य का परिणाम है।' बहुलवादियों ने माना कि लोग राज्य की आज्ञा का पालन भय के कारण नहीं, अपितु सामाजिक भलाई के लिये करते हैं।

लॉस्की ने अपनी रचना–"Grammer of Politics" में स्पष्ट कहा कि **''समाज संघात्मक है। इसलिये सत्ता भी संघात्मक होनी चाहिये।''** इनके अनुसार, 'संप्रभुता एवं सर्वोच्च राज्य की कल्पना संकटकाल की देन है।' ये आधुनिक राज्य में शांति निर्माण के भी प्रतिकूल हैं। इसलिये आधुनिक लोकतांत्रिक बहुलवादी समाजों में संप्रभुता की संकल्पना निरर्थक है। मैकाइवर ने स्पष्ट कहा कि 'राज्य, विधि का शिशु एवं पिता दोनों है।' इनके अनुसार, 'विधि के द्वारा ही राज्य का निर्माण हुआ, इसलिये शिशु है। राज्य के द्वारा विधि का निर्माण किया जाता है, इसलिये यह पिता भी है। यद्यपि यह बिंदु उल्लेखनीय है कि बहुलवादी सिद्धांतकार अन्य समूहों की तुलना में राज्य को प्राथमिकता प्रदान करते हैं। यह राज्य की समन्वय एवं सामंजस्यकारी भूमिका को स्वीकार करते हैं, राज्य की सर्वोच्च भूमिका को नहीं।' इसलिये बहुलवादी अराजकतावादी कदापि नहीं हैं, बल्कि ये मूलतः उदारवादी हैं, जो राज्य की भूमिका को तटस्थ और निष्पक्ष रूप में मानते हैं।

बहुलवाद के मुख्य आधार– हर राजनीतिक सिद्धांत के कुछ आधार होते हैं, जिन पर वह खड़ा होता है। बिना इन आधारों को समझे हम सिद्धांत को नहीं समझ सकते। **बहुलवाद के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं**–

(i) सामाजिक आधार। (ii) आर्थिक आधार। (iii) राजनैतिक आधार।
(iv) दार्शनिक आधार। (v) कानूनी आधार। (vi) अंतर्राष्ट्रीय आधार।
(vii) ऐतिहासिक आधार।

(i) बहुलवाद का सामाजिक आधार– प्रभुसत्ता का एकलवादी सिद्धांत समाज को एक इकाई मानता है, जिसमें एकता है, अनेकता नहीं तथा जिसका हित एक है, अनेक नहीं। वह एक सर्वोच्च शक्ति से शासित हो सकता है। बहुलवादी समाज की इस धारणा को सही नहीं मानते। इनके अनुसार, समाज में एकता नहीं, अनेकता है। मैकाईवर के अनुसार, सामाजिक ढांचे में समूह, समुदाय एवं संस्थाएं होती हैं। इस प्रकार लॉस्की के अनुसार, ''एक जटिल समाज बहुलवादी है।'' चूंकि समाज वास्तव में संघीय (बहुलवादी) है। अतः वह संस्था, जो समाज में एकता लाए, ऐसी होनी चाहिए कि समाज की अनेकता भी कायम रह सके। लिप्सन के अनुसार, ''न केवल एक समाज समूहों की बहुलवादी एकता है, बल्कि जिस तरीके से हर व्यक्ति एक–दूसरे से जुड़ा है, वह भी बहुलवाद है।'' लिप्सन समाज के धार्मिक, शैक्षणिक, पारिवारिक, व्यावसायिक तथा राज्य नामक समुदायों के संगठन तथा सामान्य तत्व बताते हैं। अतः समाज समूहों, समुदायों एवं संस्थाओं में विभाजित है। यह एकता नहीं, अनेकता है। उल्लेखनीय है कि मॉर्क्सवाद भी समाज को वर्ग विभाजित मानता है, समाज की एकता को नहीं।

इस सामाजिक आधार पर बहुलवादी सिद्धांत के आधुनिक जन्मदाताओं, गिरके और मैटलैंड ने समूहों के वास्तविक व्यक्तित्व (Real personality) का सिद्धांत दिया। समुदायों की स्वतंत्र सत्ता तथा अधिकार क्षेत्र की मांग की गई, जिसका अर्थ था–राज्य तथा समाज के अन्य समुदायों के बीच में **प्रभुसत्ता का विभाजन**। फिगिस ने भी चर्चों (धार्मिक समुदायों) को वास्तविक व्यक्तित्व वाला बताकर उनके लिए स्वतंत्र अधिकार क्षेत्र की मांग की। पॉल बॉनक्यूर (Paul Boncour) तथा दुःर्खीम (Durkheim) जैसे समाजशस्त्रियों ने भी व्यावसायिक संघों के अधिकार क्षेत्र की बात की। कोल, लिंड्से, बॉर्कर इत्यादि भी मानव संस्थाओं, समुदायों तथा समूहों को राज्य से पृथक् तथा स्वतंत्र मानते हैं। **संक्षेप में बहुलवाद के सामाजिक आधार की निम्नलिखित विशेषताएं हैं**–

(i) मानव जीवन के विभिन्न पहलू हैं।

(ii) समाज, एक जटिल संगठन है। इसमें एकता नहीं, अनेकता है। समाज संघीय है, एकात्मक नहीं।

(iii) समाज में अन्य संगठन, समुदाय, संस्थाएं और समूह होते हैं, जो राज्य से भी पहले हैं तथा जिनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है।

(iv) समाज में राज्य भी अन्य समुदायों में से एक समुदाय है। अतः पूर्ण सत्ता राज्य के हाथ में नहीं रह सकती।

(v) बहुलवादी या संघीय समाज में प्रभुसत्ता एकलवादी या एकात्मक नहीं हो सकती।

(vi) प्रभुसत्ता का विभाजन राज्य तथा अन्य संस्थाओं व समुदायों इत्यादि में होना चाहिए। अतः प्रभुसत्ता विभाज्य तथा सीमित है।

(ii) बहुलवाद का आर्थिक आधार– बहुलवादी, पूंजीवादी राज्य की प्रवृत्ति के विरोध में एक समाजवादी सुझाव एवं सुधार (चुनौती नहीं) के रूप में उभरा। एकाधिकार पूंजी के खिलाफ छोटे उद्योगों के संघों ने राज्य के अधिकार क्षेत्र से अलग सत्ता की मांग की। आर्थिक केंद्रीयकरण के स्थान पर आर्थिक विकेंद्रीकरण तथा पूंजीवादी राज्य के खिलाफ मजदूर यूनियनों की स्वतंत्रता आदि की मांगों को भी इसमें शामिल किया गया। आर्थिक व्यवस्था के बहुलवादी आधार की चर्चा कोल तथा लॉस्की ने की है। उन्होंने एकाधिकार पूंजी की निरंकुश प्रकृति की आलोचना करते हुए उद्योगों को बहुलवादी ढांचे पर संगठित किए जाने की मांग की। कोल ने इसी बहुलवादी आधार पर श्रेणी समाजवाद (Guild socialism) का सिद्धांत विकसित किया। लॉस्की ने अस्पष्ट रूप से औद्योगिक संघवाद (Industrial federalism) का विचार दिया। सिडनी वैब ने भी आर्थिक विकेंद्रीकरण (Economic decentralization) का समर्थन किया, किंतु बाद में इस विचार को त्याग दिया। जॉर्ज सोरेल (G. Sorel) के श्रमसंघवाद (Syndicalism) ने भी आर्थिक आधार पर बहुलवाद का समर्थन किया। किंतु बाद में लॉस्की ने बहुलवाद के आर्थिक आधार पर बहुलवाद का समर्थन किया। किंतु बाद में लॉस्की ने बहुलवाद के आर्थिक आधार श्रेणी समाजवाद (Guild socialism) तथा श्रमसंघवाद (Syndicalism) पर प्रहार किया और आर्थिक रूप से राज्य समाजवाद (State socialism) का समर्थन किया, जो स्वयं उनके आर्थिक विकेंद्रीकरण के पहले विचार से भिन्न था। बहुलवाद का आर्थिक आधार सबसे कमजोर है। पूंजीवादी उदारवादी राज्यों में आर्थिक विकेंद्रीकरण चल नहीं सकता। वर्ष–1929 की महान मंदी (Great depression) ने बहुलवाद की कमर तोड़ दी तथा तमाम विश्व के पूंजीवादी राज्य आर्थिक क्षेत्रों में घुसपैठ के समर्थक बन गए और जैसा गैलबर्थ ने लिखा है कि आधुनिक राज्य, औद्योगिक राज्य (Industrial State) बन गए हैं। अतः आर्थिक आधार की कमजोरी बहुलवाद की सबसे बड़ी कमजोरी है। वर्ग विभाजित समाज में राज्य को शक्ति दिए बिना पूंजीवादी वर्ग अपनी आर्थिक शक्ति को बनाकर नहीं रख सकता। **संक्षेप में बहुलवाद के आर्थिक आधार की निम्न विशेषताएं हैं**–

(i) एकाधिकार पूंजीवादी राज्य में आर्थिक विकेंद्रीकरण।

(ii) श्रेणी समाजवाद, उपभोक्ताओं के तथा उत्पादकों के हितों का प्रतिनिधित्व और श्रम संघवाद, श्रमिक संघों को पूर्ण सत्ता की मांग इत्यादि।

(iii) आर्थिक क्षेत्रों में राज्य की घुसपैठ नहीं, राज्य तथा अर्थव्यवस्था का विलगाव।

(iii) बहुलवाद का राजनैतिक आधार– बहुलवाद का समर्थन राजनैतिक आधार पर बहुत जोर–शोर से हुआ। निरंकुश, असीमित प्रभुसत्ता का सिद्धांत, उदारवादी प्रजातंत्र के समर्थक पचा नहीं पाए। इसके अलावा हीगल के निरंकुश राज्य के खिलाफ भी उदारवादी आवाज उठी। बहुलवाद, निरंकुश प्रभुसत्ता तथा राज्य पर अंकुश लगा देना चाहता है। जहां अराजकतावाद (Anarchism) तथा श्रमसंघवाद (Syndicalism) राज्य को समूल नष्ट कर देना चाहते हैं, वहां बहुलवाद राज्य की शक्ति, प्रभुसत्ता को समुदायों में विभाजित कर सीमित कर देना चाहता है तथा इसकी सर्वव्यापकता पर अंकुश लगाकर असीमित प्रभुसत्ता को सीमित बना देना चाहता है। प्रथम महायुद्ध के भड़कते हुए शोलों की आग जब ठंडी पड़ी, तब जैतून की शाखाओं के बीच अंतर्राष्ट्रीयवाद की आवाज बुलंद करके शांति की मांग करने वालों को भी बहुलवाद पसंद आया, क्योंकि वह राज्य की बाहरी शक्ति पर रोक लगाने का पक्षपाती है।

राज्य की निरंकुश असीमित शक्ति के दबाव में सिसकती हुई मानव स्वतंत्रता को राहत देने के लिए बहुलवाद ने कानूनी प्रभुसत्ता की आलोचना की। राज्य की शक्ति को सीमित करके अन्य मानव समुदायों को शक्तिशाली बनाने का उद्देश्य मानव के अधिकारों को बल प्रदान करना था। राजनैतिक रूप में बहुलवाद का आधार उदारवादी प्रजातांत्रिक मूल्य थे, जो दैत्याकार राज्य को जनसेवक में बदल देना चाहते थे। अतः राजनैतिक संगठन का बहुलवादी सिद्धांत अराजकतावादी कहा गया है, किंतु वास्तव में यह खालिस प्रजातंत्रीय भावनाओं पर आधारित है। **संक्षेप में बहुलवाद के राजनैतिक आधार की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं**–

(i) यह राज्य की निरंकुशता को सीमित करना चाहता है।

(ii) यह मानव समुदायों को शक्ति प्रदान कर मानवाधिकारों को बढ़ावा देना चाहता है।

(iii) यह राज्य को शक्ति के स्थान पर जनसेवक के रूप में स्वीकार करता है।
(iv) यह प्रभुसत्ता के क्षेत्र को घटाकर मानव के क्षेत्र का विस्तार करना चाहता है।
(v) यह आज्ञा के स्थान पर विचार-विमर्श को महत्व देता है।
(vi) यह राजनैतिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को अपर्याप्त मानता है।
(vii) यह प्रशासनिक विकेंद्रीकरण चाहता है।

(iv) बहुलवाद का दार्शनिक आधार- बहुलवाद का दार्शनिक आधार विलियम जेम्स का वास्तववाद (Pragmatism) कहा जाता है। लॉस्की ने अपनी रचनाओं में इस दर्शन के प्रभाव को मान्यता दी है। जेम्स ने एकलवादियों तथा विशेषकर आदर्शवादियों पर प्रहार किया। वास्तववाद का मुख्य आधार है कि **विश्व में एकता नहीं है, बहुलता है, विविधता है, अनेकता है।** एकलवादी (Monists) विश्व में एकता की मांग करके अनेकता को नष्ट कर देना चाहता है और वास्तववाद, एकलवाद के इस दर्शन के विरुद्ध बहुलवादी विश्व का प्रचार करता है। अतः यह वास्तववाद का विश्व की विविधता का विचार बहुलवाद का दार्शनिक आधार माना जाता है। वास्तववाद, आधुनिक प्रजातांत्रिक भावनाओं से प्रेरित एक विद्रोह था, जो आदर्शवादी निरंकुश राज्य की एकता पर विश्व अनेकता के सिद्धांत से प्रहार कर रहा था। लॉस्की ने वास्तववाद को महत्वपूर्ण माना है। हैसियो के अनुसार, ''साधारण रूप में वास्तववाद और बहुलवाद में कोई न्यायसंगत संबंध नहीं है।'' किंतु हैसियो का मानना है कि वास्तववाद का बहुलवाद पर दार्शनिक प्रभाव जरूर रहा है और लॉस्की पर भी इसका प्रभाव रहा है। अतः इसे बहुलवाद का दार्शनिक आधार माना जा सकता है। **इसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं**-

(i) विश्व में अनेकता, विविधता, बहुलता है, एकता नहीं।
(ii) एकता की स्थापना विश्व अनेकता को नष्ट कर देगी और मानव की स्वतंत्रता को इससे झटका लगेगा।
(iii) आदर्शवादी इस एकता को स्थापित करके व्यक्तिवाद को नष्ट कर देना चाहते हैं। अतः अनेकता की रक्षा की जानी चाहिए।

(v) बहुलवाद के कानूनी आधार- ऑस्टिन के कानूनी प्रभुसत्ता के सिद्धांत की बहुलवाद ने जमकर आलोचना की। कोकर के मतानुसार, ''अधिकतर बहुलवादी हीगल, ट्रॉटस्की, बोसाकें तथा फॉसिस्टों के निरंकुश सिद्धांत को अपने हमले का मुख्य आधार नहीं बनाते, बल्कि कानूनी प्रभुसत्ता का सिद्धांत उनके हमले का मुख्य आधार है।'' बोदां ने सर्वप्रथम कहा था कि ''प्रभुसत्ता की मुख्य विशेषता है कि यह साधारणतः तथा अकेली सब नागरिकों को कानून देने की शक्ति है।'' किंतु बोदां ने प्रभुसत्ता पर प्राकृतिक तथा दैवीय कानूनों का अंकुश लगाया, जिसे हॉब्स तथा ऑस्टिन ने हटाकर नंगी कानूनी प्रभुसत्ता के सिद्धांत को जन्म दिया। ऑस्टिन ने कहा कि ''कानून प्रभुसत्ताधारी की आज्ञा है।'' इसी का बहुलवादी जबरदस्त विरोध करते हैं। लॉस्की ने कहा, ''प्रभुसत्ता के कानूनी सिद्धांत को राजनैतिक दर्शन के लिए मान्य बनाना असंभव है।'' मैकाईवर लिखते हैं कि ''कानून, आज्ञा से एकदम उल्टी चीज है।'' बहुलवादी कानून को राज्य से ऊपर तथा राज्य से व्यापक मानते हैं। मैकाईवर लिखते हैं कि 'राज्य कानून का बच्चा तथा संरक्षक दोनों ही है।' ड्यूगी, क्रैब तथा हालैंड ने कानूनी प्रभुसत्ता की आलोचना की है। कानून, राज्य की आज्ञा नहीं, सामाजिक जीवन की आवश्यकताएं हैं। ड्यूगी कानून निर्माण का आधार **सामाजिक सुदृढ़ता** (Social solidarity) को मानते हैं। कानून का पालन जनता इसलिए नहीं करती कि वे राज्य की शक्ति से डरते हैं, बल्कि इसलिए कि कानूनों की उपयोगिता है और सामाजिक सुरक्षा के लिए कानूनों का पालन होना चाहिए। कानूनों का आधार राज्य की शक्ति नहीं, बल्कि नैतिकता, औचित्य (Sense of right) प्रथाएं इत्यादि हैं। राज्य, कानून से ऊपर नहीं, बल्कि कानून, राज्य से ऊपर होता है। **संक्षेप में कानूनी आधार की निम्नलिखित विशेषताएं हैं**-

(i) कानून, प्रभुसत्ता की आज्ञा नहीं है।
(ii) कानून पालन का आधार राज्य की शक्ति नहीं है।
(iii) राज्य तथा प्रभुसत्ता कानून से ऊपर नहीं, बल्कि कानून के नीचे हैं।
(iv) कानून का आधार सामाजिकता, नैतिकता तथा प्रथाएं हैं।
(v) हर संस्था तथा समुदाय अपने लिए कानून बनाते हैं।
(vi) राज्य केवल समुदायों को नियंत्रित करने तथा उनके बाहरी संबंधों को निश्चित करने के लिए ही कानून बनाता है।

(vi) बहुलवाद का अंतर्राष्ट्रीय आधार- राष्ट्रीय राज्यों की अंधराष्ट्रीय निरंकुश बाहरी प्रभुसत्ता ने वर्तमान शताब्दी में युद्ध के माध्यम से मानव जाति को जो झटका दिया है, उसकी प्रतिक्रिया में अंतर्राष्ट्रीयवाद उभरा। लॉस्की ने राज्य की बाहरी प्रभुसत्ता पर अंकुश लगाने की मांग की तथा अपने बहुलवादी विचारों में अंतर्राष्ट्रीयता को महत्व दिया। इस आधार पर राज्य की बाहरी प्रभुसत्ता की आलोचना की गई है। बहुलवाद राज्य की बाहरी प्रभुसत्ता पर अंतर्राष्ट्रीय कानून, संधियों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठन के आदेशों के बंधन को मान्यता देता है। यदि राज्य का उद्देश्य मानव कल्याण है, तो राज्य की बाहरी प्रभुसत्ता को नष्ट करना होगा। किंतु यह आधार आज की राज्य विभाजित दुनिया में बहुत कमजोर है।

(vii) बहुलवाद का ऐतिहासिक आधार- मध्य युग में राज्य की स्थिति बहुलवाद को ऐतिहासिक आधार प्रदान करती है।

मध्य युग में सत्ता विभिन्न समुदायों में बंटी हुई थी तथा राज्य प्रभुसत्ताधारी नहीं था। कोकर लिखते हैं कि ''किसी प्रदेश में व्यक्तियों पर संगठित नियंत्रण विभिन्न सत्ताओं द्वारा रखा जाता था। जैसे-रोमन चर्च, होली रोमन सम्राट, राजा, सामंत, चार्टर्ड नगर, संघ इत्यादि।'' सत्ता विभाजित तथा विकेंद्रीकृत थी। राज्य के पास न आंतरिक सत्ता थी, न कि बाहरी। अतः मध्ययुग की सामंती अर्थव्यवस्था में निरंकुश प्रभुसत्ता का अभाव था। कोकर आगे लिखते हैं, साधारणतः मध्ययुग के बारे में कहा जा सकता है कि तब राज्य की कोई भावना नहीं थी, कोई सामान्य तथा एक जैसी केंद्रीय शक्ति पर आश्रितता नहीं थी, कोई सर्वोच्च प्रभुसत्ता नहीं थी, कोई सिविल कानून का समान दबाव नहीं था। आधुनिक युग में जो निरंकुश प्रभुसत्ता खड़ी की गई है, उसे नष्ट किया जा सकता है। क्योंकि इतिहास में ऐसा समय भी रहा है, जब यह नहीं थी। इस प्रकार मध्ययुग के राजनैतिक संगठन के ऐतिहासिक आधार पर बहुलवादी प्रभुसत्ता पर हमला करते हैं। **संक्षेप में ऐतिहासिक आधार की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं**-

(i) मध्ययुग में निरंकुश प्रभुसत्ता नहीं थी और वर्तमान युग में भी इसकी आवश्यकता नहीं है।

(ii) निरंकुश प्रभुसत्ता आधुनिक युग में खड़ी की गई है तथा नष्ट भी हो सकती है।

(iii) राज्य की प्रभुसत्ता सदा से मौजूद नहीं रही है।

(iv) मध्ययुग तथा वर्तमान युग में राजनैतिक संगठन का आधार एक जैसा ही है।

नव-बहुलवाद- आधुनिक बहुलवादियों को नव-बहुलवादी भी कहा जाता है, जिसमें रॉबर्ट ढ़ाल, चॉर्ल्स लिंडलॉम के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अनुसार, आधुनिक औद्योगिक राज्य अत्यधिक जटिल है तथा ये आम लोगों के प्रति कम अनुक्रियाशील है। जैसाकि परंपरागत बहुलवादी मानते थे। नव-बहुलवादी समाज में अनेक समूहों को स्वीकार करते हैं। विशेषकर रॉबर्ट ढ़ाल ने अमेरिकी समाज में शक्तियों के बहुलवादी वितरण को स्वीकार किया। इनके अनुसार, प्रत्येक समूह शक्ति की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रतिस्पर्धा करते रहते हैं। रॉबर्ट ढ़ाल द्वारा चित्रित बहुलवाद स्पष्ट रूप से मॉर्क्सवाद से भिन्न हैं, क्योंकि बहुलवादी उदारवादी विचारकों के अनुसार, समाज में राजनैतिक और आर्थिक शक्ति का विभाजन पाया जाता है। जबकि मॉर्क्सवादियों के अनुसार, 'अर्थव्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण होगा एवं इन्होंने सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को भी स्वीकार किया।' परंपरागत बहुलवादियों ने समाज की शक्तियों को विभिन्न समूहों में वितरित माना, जबकि नव-बहुलवादी वाणिज्यिक समूहों को अन्य समूहों या समुदायों की तुलना में ज्यादा शक्तिशाली मानते हैं।

बहुलवादी राज्य का समकालीन विचार- बहुलवादी राज्य के विचार के समकालीन दृष्टिकोण के अनुसार, राज्य एक तटस्थ व निष्पक्ष संस्था है, जिसके द्वारा समाज के विभिन्न समूहों और विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित किया जाता है और राज्य का किसी भी एक समूह या विशेष के प्रति लगाव या झुकाव नहीं होता। क्योंकि राज्य का समाज से अलग या पृथक् कोई हित नहीं होता। राज्य, समाज का सेवक है, मालिक नहीं। इसके अनुसार संसार की संस्थाएं जैसे-न्यायपालिका, पुलिस, सैन्य व्यवस्था का दृष्टिकोण भी पूर्णतः निष्पक्ष व तटस्थ होता है। दूसरी श्रेणी के विचारक ऐसा मानते हैं कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया के प्रभावी होने के कारण अनेक प्रकार के हित समूहों और दल का निर्माण हो चुका है। इसलिए राज्य सरकार की अनुक्रिया जनमत के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। नव-बहुलवादी विचारकों रॉबर्ट डहल, चॉर्ल्स लिण्डब्लॉम ने आधुनिक औद्योगिक राज्यों को अत्यधिक जटिल माना है। इनके अनुसार, आधुनिक राज्य, परंपरागत राज्य की तुलना में जनमत के प्रति कम अनुक्रियाशील हैं।

नव-बहुलवादियों ने माना है कि समाज में शक्तियों का विखराव सभी समूहों के बीच एक समान नहीं होता, बल्कि व्यावसायिक समूह ज्यादा प्रभावशाली स्थिति में होते हैं। लिण्डब्लॉम ने अपनी रचना-"Politics and Markets : The World's Political Economic Systems" (Charles E. Lindblom) में यह स्वीकार किया है कि राज्य के ऊपर वाणिज्यिक दबाव समूहों का अत्यधिक प्रभाव होता है। नव-बहुलवादियों ने यह भी स्वीकार किया कि राज्य के अपने स्वयं के संकीर्ण हित होते हैं, क्योंकि सरकार में सिविल सेवक, न्यायाधीश व सैन्य व्यवस्था के लोग अपने अधिकतम हितों को संरक्षित करने का प्रयत्न करते हैं। नव-बहुलवादी विचार को नव-कॉरपोरेटवाद का विचार भी कहा जाता है। इसमें रॉबर्ट डहल के द्वारा अपने बहुलवाद की मान्यता को संशोधित किया गया, क्योंकि रॉबर्ट डहल ने पहले कहा था कि समाज में सभी समूह की शक्तियां लगभग समान होती हैं।

.....